रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में प्रगतिशील चेतना

डॉ.कविता आचार्य, सह आचार्य

राजकीय कन्या महाविद्यालय, भरतपुर।

बीसवीं शताब्दी ज्ञान और विचार के महा विस्फोट की शताब्दी है। इस तथ्य और सत्य से कोई भी बुद्धिजीवी अपनी असहमति व्यक्त नहीं कर सकता। यही वह शताब्दी है जिसने नित नवीन विचारों, दर्शनों और सिद्धान्तों को जन्म लेते, पल्लपित होते, प्रचरित–प्रसारित होते और परीक्षित होते देखा। नानाविध विचार/ सिद्धान्त सरणियों के प्रवाह में मार्क्सवाद भी व्यक्ति के विचारों के केन्द्र में समाहित हुआ। कार्ल माकर्स ने दुनिया को जिस नवीन सामाजिक, राजनैतिक–आर्थिक विचार और दर्शन से परिचित कराया उसे विचारकों और बुद्धिजीवियों ने 'मार्क्सवाद' के नाम से अभिहित किया, जाना और समझा। यानि की राजनैतिक क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में कार्ल मार्क्स द्वारा प्रतिपादित विचार और दर्शन ''मार्क्सवाद' के नाम से प्रचारित–प्रसारित ही नहीं अपितु स्थापित भी हुआ। इन विचारों ने पूॅजी के निर्माण की प्रक्रिया को रेशे–रेशे खोलकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया और 'पूॅजी' अपनी सम्पूर्ण कुटिलता और कुरूपता के साथ हमारे सामने नंगी सी हो गयी। मार्क्स और फ्रेडरिक एंगल्स के विचारों की रोशनी में हमने देखा कि इस दुनिॅया में पूॅजी या आवारा पूॅजी क्या–क्या खेल दिखा रही है। इस पूॅजी के कारनामों के कारण दुनिॅया दो ध्रुवों में विभक्त होकर रह गयी है जिसका एक ध्रुव अमेरीकी नेतृत्व में पूॅजीवादी ध्रुव है जो दुनिॅया के सम्पूर्ण संसाधनों पर अपना मालिकाना हक जमाना चाहता है। पूॅजीपति अमेरीका का नेतृत्व दुनिॅया में शोषण और अन्याय को, गैर बराबरी को बनाये रखना चाहता है। निर्धन और निर्बलों को शोषण की अन्तहीन चक्की में पीसकर अपना उल्लू सीधा करते रहना चाहता है। मानवीय अस्मिता, मानीय गरिमा पूॅजीपतियों के प्रतिनिधि इस दादा की कभी भी चिन्ताऐं नहीं रही। व्यक्ति और राष्ट्र की सम्प्रदुताऐं पूॅजीवाद को कभी भी स्वीकार्य नहीं हुयी। जबकि इन सबके बरक्स एक दूसरी विचारधारा या दर्शन और प्रचलन में आया जिसका नेतृत्व समाजवादी खेमे के प्रमुख राष्ट्र रूप ने किया। चीन, भारत, युगोस्वालिया, क्यूबा आदि

देशों ने अपनी बदहाल और विपन्न जनता के दुखों का निस्तार इसी मार्क्सवादी दर्शन में देखा। यह दर्शन (Philosophy) मनुष्य – मनुष्य के बीच की गैर बराबरी को खत्म कर मानवीय और सामाजिक समानता की बात करता है, आर्थिक समाता की बात करता है और मानवीय गरिमा और सस्मिता के पक्ष में मजबूती के साथ खड़ा होता है। मार्क्सवाद, पीड़ित–उपेक्षित, वंचित और शोषित मनुष्य के साथ सम्मान जनक व्यवहार के तकाजे करता है। बीसवीं सदी के मध्य में युरोप से आई मार्क्सवादी विचार की आंधी ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को और लेखकों, रचनाकारों को भी झकझोर कर रख दिया। इन सजगह बुद्धिजीवियों और रचनाकारों ने अपने विचारों और रचनाओं में मार्क्सवादी विचारों को मुखर अभिव्यक्ति दी। मानवीय गरिमा और समानता के पक्ष में परचम फहराये जाने लगे। इस विचार से अनुप्रमाणित साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में मनुष्य का आह्वान किया कि वे इस देश, धरती और समाज का नयी दृष्टि से अवलोकन करें और अन्याय एवं शोषण की मुखालपत में उठ खड़े हों। जाति पांति, छुआछूत, भेदभाव, अमीरी–गरीबी, ऊॅचनीच, शोषण और अन्याय, आर्थिक असमानता, स्त्री–परवशता और रूढ एवं अप्रासंगिक परम्पराओं के निर्वहन के स्थान पर मार्क्सवादी विचारों को अपने जीवन का आधार बनाकर, देश, समाज का विश्लेषण और मूल्याकंन करें और समाज का, व्यक्ति का पुनर्निर्माण करें। इस प्रकार के विचारों को खाद–पानी मार्क्सवादी विचारधारा और दर्शन प्रदान कर रहा था अतः साहित्यिक क्षेत्र में आकर यह दर्शन ' प्रगतिवाद ' कहलाया। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि राजनैतिक क्षेत्र का मार्क्सवाद साहित्यिक क्षेत्र में आकर प्रगतिवाद या 'प्रगतिशीलता' कहलाया। इसी प्रगतिवाद या प्रगतिशीलता को अनेक हिन्दी और हिन्देतर साहित्यारों ने अपनी रचनाओं का मूल स्वर बनाया। इस प्रकार के नामवर साहित्यकारों में महाकवि/ राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का नाम भी श्रद्धा से लिया और गिना जाता है।

आज की इस विचार गोष्ठी और सत्र में चर्चा का केन्द्र बिन्दू रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में प्रगतिशीलता है। श्री दिनकर ने अपने जीवन काल में अनेक प्रसिद्ध रचनाओं का प्रणयन किया जिनमें उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, कुरूक्षेत्र, रश्मिरथी आदि अपना प्रमुख स्थान

रखती है। मैंने अपने पत्र को कुरूक्षेत्र और रश्मिरथी पर ही केन्द्रित रखा है। एक बार यह निवेदन करना चाहता हूँ कि प्रगतिशीलता का तात्पर्य अप्रासंगिक परम्परित और रूढ़ को त्याग कर नवीनका सृजन, रक्षण और आह्वान से लिया जाना चाहिए। यानि की प्रगतिशील चेतना से तात्पर्य विचारों की वह चेतना है जो सड़े गले का परित्याग करके नवीन को देखना, रचना और स्वीकारना चाहती है। इसमें संदेह नहीं है कि कोई भी बदलाव या परिवर्तन सबसे पहले मानवीय चेतना में घटित होता है। रामधारी सिंह दिनकर की लोकप्रिय एवं प्रमुख कृतियों कुरूखेत्र और रश्मिरथी में भी इसी नवीन चेतना और दृष्टि के आद्यन्त दर्शन होते है। लोक विश्रुत इतिहास को दिनकर ने अपनी रचना का आधार बनाया और अपनी प्रगतिशील चेतना से पाठकों के सामने नये विचार बिन्दू प्रस्तुत किये। इन विचार बिन्दुओं ने पाठकों को सोचने को विवश कर दिया और वे इतिहास उपेक्षित, घटनाओं और चरित्रों का मूल्यांकन विश्लेषण नये ढंग से करने को विवश हो गये। सोच के इस नये ढंग को मैं प्रगतिशील चेतना का प्रतिफल या परिणाम मानता हूँ।

कुरूक्षेत्र दरअसल युद्ध और शान्ति की समस्या को स्वर प्रदान करता है। कृति में आद्यंत हम एक द्वन्द्व को देखते हैं। क्या कोई युद्ध धर्मयुद्ध हो सकता है? दिनकर ने यह विचार हमारे सामने रखा। दिनकर की प्रगतिशील चेतना ही है जो इस कृति के माध्यम से यह प्रमाणित करती है कि कोई भी युद्ध धर्मयुद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि युद्ध का आदि, मध्य और अंत सब पापमय होते हैं। युद्ध में जब हिंसा को ही गयी तो धर्म कहॉ रहा? कोई भी युद्ध कर्ताओं के इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लड़ा जाता है अतः लक्ष्य प्राप्ति कदापि धर्म नहीं हो सकता। कुरूक्षेत्र में हम युद्ध के साथ–साथ का भी साक्षात्कार करते हैं। इसी प्रकार दिनकर की अन्य प्रमुख काव्य कृति रश्मिरथी भी अपेन में प्रगतिशील चेतना से ओत–प्रोत है। कृति का आरम्भ देखिये–

''जय हो जग में जले जहॉ भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को बल को।

किसी वृन्त पर खिले विपिन में, पर, नमस्य है फूल,
सुधि खोजते नहीं गुणों का आदि, शक्ति का मूल।''

दूसरा छन्द देखिये –

'' ऊँच नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है
दया–धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वहीं भरी हो जिसमें निर्भयता की आग
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप त्याग!''

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में जाति आधारित नहीं गुण आधारित मनुष्य का महत्व प्रतिपादित कर प्रगतिशील चेतना का ही तो दिनकर प्रमाण दे रहे हैं। जैसा कि मैं पूर्व में कह चुका हूँ कि मार्क्सवादी विचारों से खाद पानी ग्रहण कर रही प्रगतिशील चेतना जाति–पांति, भेदभाव, ऊँच–नीच , अमीर–गरीब, इन सबका विरोध करती है और मानवीय अस्मिता और गरिमा की प्रतिष्ठा करती है। इसी चेतना के वशीभूत दिनकर अपनी इन कृतियों में भी इस देश की सबसे प्रमुख और गंभीर समस्या जाति–पांति का विरोध लोक–प्रसिद्ध महाभारत के पात्रों द्वारा व्यक्त करते हैं। ये काव्य पंक्तियॉ देखिये–

''जाति! हाय री जाति! '' कर्ण का ह्रदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला,
'जाति–जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखण्ड
मैं क्या जानूं जाति? जाति है ये मेरे भुजदण्ड।

****

ऊपर सिर पर कनक छत्र, भीतर काले के काले
शरमाते हैं नहीं जगत में, जाति पूछने वाले।
सूतपुत्र हूँ मैं लेकिन थे पिता पार्थ के कौन?
साहस हो तो कहो, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।
मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिए चलते हो,

पर अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर थर कांपते तुम्हारे प्राण,
छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान।

****

मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुष छोड़ कर और गौत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर सूर,
जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।

****

कर्ण भले ही सूत पुत्र हो, अथवा श्वपच, चमार,
मलिन, मगर, इसके आगे है सारे राजकुमार।

****

बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हो यदि काम?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है, नहीं वंश, धन—धाम।''

दिनकर की प्रगतिशील चेतना ही उनसे यह उद्घोष करवा रही है, चेतावनी दे रही है—

''धंस जाये वह देश अतल में, गुण की जहॅा नहीं पहचान
जाति गौत्र के बल से ही आदर पाते जहां सुजान।
नहीं पूछता है कोई तुम वृति वीर या दानी हो
सभी पूछते मात्र यही तुम किस कुल के अभिमानी हो,
मगर मनुज क्या करें? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो बात नहीं।

****

मैं कहता हूॅ अगर विधाता नर को मुट्ठीह में भरकर
कहीं छींट दे ब्रह्मलोक से ही नीचे भूमण्डल पर

तो भी विविध जातियों में ही मनुज यहॅा आ सकता है
नीचे है क्यारियॅा बनी, तो बीज कहॅा जा सकता है।

****

कौन जन्म लेता किस कुल में? आकस्मिक ही है यह बात
छोटे कुल पर किन्तु यहॅा होते तब भी कितने आघात।
हाय हाय जाति छोटी है, तो फिर सभी हमारे गुण छोटे
जाति बड़ी, तो बड़े बने, वे रहे लाख चाहे खोटे।''

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में जातिवाद का विरोध और योग्यता के मान सम्मान का आह्वान महाभारत की लोक प्रसिद्ध घटना के वर्णन द्वारा किया गया है जिसका आधार प्रगतिशीलता ही है।

इन पंक्तियों में मानवीय सभ्यता और योग्यता का सम्मान गुंजित और योग्यता का सम्मान गुंजित और परिलक्षित हो रहा है। अब केवल, कुल या वंश की उच्चता के अभिमान और अंहकार से काम चलने वाला नहीं है। यही इन पंक्तियों का मर्म है।

सत्तावानों के स्थान पर गुणी जनों की गरिमा और मानवीय प्रतिष्ठा का आह्वान करते हुए दिनकर उद्‌बोध करते हैं कि –

''कवि, कोविद, विज्ञान विशारद, कलाकार पण्डित ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना, ज्ञान, उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी
इन विभूतियों को जब तक संसार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न उन्हें वह मानेगा।
जब तक पड़ी आग में धरती, इसी तरह अकुलाऐगी,
चाहे जो भी करें दुखों से छूट नहीं वह पायेगी।

****

इसलिए तो मैं कहता हूॅं अरे ज्ञानियों खड़ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी, भू का वह तुम त्रास हरो।''

यहॉ ज्ञानियों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों का संघर्ष हेतु आह्‌न किया गया कि वे व्यापक जन और देशहित में खड़क भी धारण करना पड़े तो ऐसा अवश्य करें।

आंतक और सत्ता का भय केवल व्यक्ति हित के लिए होने पर दिन कर की प्रगतिशील चेतना कर रही है –

'' और ' रण भी किएलिए? नहीं जग से दुख वैन्य भगाने को,
पर पोषक, पथ भ्रांत मनुज को नहीं धर्म पर लाने को।

****

रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हो,
और प्रजाऐं मिले उन्हें, वे ओर अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित् अभाव से छूट सकें,
बड़े राज्य की सीमा, जिससे अधक जनों को लूट सके।

****

रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,
भूपों के विपरित न कोई, कहीं, कभी कुछ भी बोले।''

आप उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में आंतक, युद्ध आदि के गणित को, उसके कारण और परिणाम को समझ सकते हैं। यहॅा मानवीय पक्ष में खड़ी दिनकर की प्रगतिशील चेतना ही है जो आंतक और भय द्वारा सृजित राज और सत्ता को बेनकाब कर कर रही है। दूसरी और दिनकर की प्रगतिशील चेतना के केन्द्र में मानवता विराज रही है।

'' वीर वही है जो कि शत्रु पर जब भी खड़ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।''

अन्यायकर्ता, शोषणकर्ता ही यहॅा वास्तविक शत्रु है, इसी शत्रु के विरूद्ध क्रांति धर्मिता के साथ खड़ग उठाकर मानवता की रक्षा करना दिनकर की चेतना का केन्द्र है। दिनकर अपनी प्रगतिशील चेतना से अनुप्राणित होकर नित नवीनता की आकांक्षा युवकों को परासे रहे हैं–

''नयी कला, नूतन रचनाऐं, नयी सूझ, नूतन साधन,
नये भाव, नूतन उपमंग से, वीर बने रहते नूतन।''

प्रगतिशीलता सदैव नवीन को अपनाती है यह प्रगतिशीलता का लक्षण है। इसी क्रम में युवकों का आह्वान करता हुआ कवि दिनकर कह उठता है–

''है कोन विघ्न ऐसा जग में, टिक सके वीर नर के मग में?
खम ठोंक ठेलता है जब नर पर्बत के जाते पॅाव उखड़।
मानव जब जोर लगाता है
पत्थर पानी बन जाता है।''

मानव पर दिनकर का विश्वास देखिये –

''गुण बड़े एक से एक प्रखर, हैं छिपे मानवों के भीतर,
मेंहदी में जैसे लाली हो, वर्तिका बीच उजियाली हो
बत्ती जो नहीं जलाता है
रोशनी नहीं वह पाता है।

******

वसुधा का नेता कौन हुआ? भूखण्ड विजेता कौन हुआ?

अतुलित यश क्रेता कौन हुआ? नवधर्म प्रणेता कोन हुआ?
जिसने न कभी आराम किया,
विघ्नों में रहकर काम किया।

******

कंकरियॅा जिनकी सेज सुधर, छाया देता केवल अंबर
विपदायें दूध पिलाती हैं, लौरियॅा ऑधियॅा सुनाती है,
जो लाक्षागृह में जलते है।
वे ही सूरमा निकलते है।''

कवि का आह्वान ललकार भरा है, देखिये –

''बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर! मेरे ताजा!
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे।
तू स्वंय तेज भयकारी है
क्या कर सकती चिंगारी है।''

यहॅा दिनकर कह रहे हैं कि संघर्ष ही जीवन निर्माता है, आगे बढ़ने का विश्वास बढ़ाता है। अतः युवावर्ग में ही दिनकर भारत का भविष्य देखते हैं। युवा वर्ग ही नये मान–मूल्य स्थापित कर सकता है उनका यह अटूट विश्वास है।

प्रगतिशील चेतना से परिचालित आज का युवा दिनकर के माध्यम से पुरूषार्थ को सबसे ऊपर रखता हुआ उद्घोष कर रहा है–

''कहा कर्ण ने! वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खड़ा, उसे पहचान नहीं पाते हैं।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूॅ मैं,
बाहों को पर, कहीं भाग्य से बली मानता हूॅ मैं।

******

महाराज, उद्यम से विधि का अंक पलट जाता है,

किस्मत का पाशा पौरूष से हार, पलट जाता है।

और उच्च अभिलाषाऐं तो मनुज मात्र का बल है

जगा जगा कर हमें वही तो रखती नित चंचल है।''

उपर्युक्त पंक्तियॉ भाग्यवादिता के स्थान पर श्रम और पुरूषार्थ की प्रतिष्ठा कर रही हैं। चालाक लोगों ने भाग्यवाद को शोषण का हथियार बनाया हुआ है। अतः दिनकर कहते हैं –

''भाग्यवाद आवरण पाप का

और शस्त्र शोषण का

जिससे रखता दबा एक जन

भाग दूसरे जन का।।

(कुरूक्षेत्र से)

एक मनुज संचित करता है

अर्थ पाप के बल से

और भोगता इसे दूसरा

भाग्यवाद के छल से।

राजा प्रजा नहीं कुछ होता

होते मात्र मनुज ही

भाग्य लेख होता न मनुज को

होते कर्मठ भुज ही।''

दिनकर का प्रगतिशील कथन देखिये–

'' नर समाज का भाग्य एक है,

वह श्रम, वह भुजबल है।''

दूसरा उदाहरण भी भाग्यवादिता का खण्डन और श्रम एवं पुरूषार्थ का मण्डन कर रहा है,

उसकी पुष्ठि करता है–

" ब्रह्म से कुछ लिखा भाग में
मनुज नहीं लाया है,
अपना सुख उसने अपने
भुज बल से ही पाया है।
प्रकृति नहीं डर कर झुकती है
कभी भाग्य के बल से
सदा हारती वह मनुष्य के–
उद्यम से, श्रम जल से।"

******

"नर समाज का भाग्य एक है,
वह श्रम बल वह भुज बल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई
पृथ्वी विनीत नभ तक है।"

मार्क्सवादी दर्शन में श्रम और श्रमिक की प्रतिष्ठा सर्वोपरी है। प्रगतिशील चेतना का ही तकाजा है कि दिनकर भाग्यवाद का विरोध और श्रम की वकालत कर रहे हैं, कर्म का महत्व बतला रहे हैं –

" श्रम होता सबसे अमूल्य धन
सब जन खूब कमाते
सब अशंक रहते अभाव से
सब इच्छित सुख पाते।"
"कर्मभूम है निखित महीतल जब तक नर की काया,
तब तक है जीवन के अणु–अणु में कर्तव्य समाया।

क्रियाधर्म को छोड़ मनुज कैसे निज सुख पायेगा,
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहॅा कहीं जायेगा।''

रश्मिरथी में दिनकर की प्रगतिशील चेतना श्रमशीलों को पक्षधर है। जिन्हें कहीं से भी संबल नहीं मिल रहा उनका साथी बनकर कर्ण कर रहा है–

'' जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी विहिन है, निन्दित है, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा बन्धु सहचर है,
विधि के विरूद्ध ही उसका रहा समर है।
राधेय न कुरूपति का सह जेता होगा,
वह पुनः निःस्व दलितों का नेता होगा''।

यहॅा कर्ण के मुख से निकल रहे शब्द दिनकर के ही हैं''। जो प्रगतिशील चेतना से ओतप्रोत होकर उद्‌घाटित/उच्चरित हो रहे हैं। पीड़ितों– वंचितों का सहयोग करने की चाह रखता कर्ण दिनकर की प्रगतिशील चेतना का मानस पुत्र ही तो है।

शोषण को दिनकर अमानवीय मानते रहे हैं''। मनुष्य– मनुष्य की समानता दिनकर का सपना रही है जो अन्यान्य अवसरों पर उनकी कृतियों में व्यक्त हुई है। एक उदाहरण देखिये–

'' दलित हुऐ निर्बल सबलों से मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन,
आह! सभ्यता आज कर रही असहायों का शोषित शोषण।
क्रांति– धात्रि कविते। जाग उठ, आडम्बर में आग लगा दें,
पतन पाप पाखण्ड़ जलें, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दें।''

एक अन्य कविता ने हुंकार करता हुआ दिनकर का काव्य युवकों का आह्मान करता हुआ हुॅकार उठता है–

'' उठो उठो कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो
बढ़ो–बढ़ो कि आग में गुलामियों को झोंक दो,

परम्परा की होलिका जला रही जवानियॉं''

उक्त पंक्तियों में दिनकर क्रांति का समर्थन करते हुऐ युवकों पर पूरा भरोसा जता रहे ह स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देखे और पाले गये सपने जब टूटने लगे तो दिनकर की प्रगतिशील चेतना इस प्रकार व्यक्त हुई –

'' विवश देश की छाती पर ठोकर की एक निशानी
दिल्ली पराधीन भारत की जलती हुई कहानी,
मरे हुओं की ग्लानि, जीवितों को रण की ललकार
दिल्ली, वीर विहिन देश की गिरी हुई तलवार।''

मोहभंग के दौर से गुजरते युवा और देश की पीड़ा से दिनकर बावस्ता हैं। यही कारण है कि उनके स्वर में स्वर मिलाकर दिनकर की प्रगतिशील चेतना क्रांति धर्मिता से चालित होकर उद्घोष कर उठी है–

'' फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं,
धूसरता सोने से श्रृंगार सजाती है,
तो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है''

–जनतंत्र का जन्म

इस उद्धरण से और प्रामाणिक क्या होगा जो कि दिनकर की चेतना सीधा– सीधा क्रान्तिकारी जनता के जागरूक हो उठने और सत्ता केन्द्रों की ओर कूच करने की सूचना दे रही है। इसे क्रांतिघोष ही समझा जाना चाहिए। यह क्रांतिघोष नहीं तो और क्या है?

शांति और क्रांति में कहीं न कहीं कोई अन्तर्सबंन्ध है तो है इसे दिनकर ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

'' सच है सत्ता सिमट – सिमट जिनके हाथों में आयी,
शांति भक्त वे साधु पुरूष क्यों चाहें कभी लड़ाई?

शांति खोलकर खड़क क्रांति का जब वज्रन करती है,

तभी जान लो, किसी समर का वह सर्जन करती है।''

समतावादी समाज की संरचना ही स्थायी शांति की एक मात्र शर्त और गारंटी है। जहॅा असमान वितरण नहीं हो, सबका प्राप्य समान हो, वहीं शांति हो सकती है–

'' शांति नहीं तब तक जब तक, सुख भाग न नर का सम हो।

नहीं किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।''

इससे बड़ा प्रमाण दिनकर का मार्क्सवादी विचार का, प्रगतिशील विचार के समर्थन का और क्या होगा, आप स्वंय निर्णय कर लें। यहॅा शोषण का विरोध और साम्यवाद का प्रबल समर्थन स्वतः ध्वनित हो रहा है।

दिनकर की प्रगतिशील चेतना पाप–पुण्य की नयी परिभाषाऐं देती प्रतीत हो रही है, देखिये'

'' पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला?

या कि न्याय खोजते विध्न का शीश उड़ाने वाला?''

यहॅा कोई सा भी पाप पूण्य मानवीय अस्मिता और न्याय से ऊपर नहीं है। अपितु हर बाधा और विध्नप को पारक रती मानवीय अस्मिता का गुणगान है।

मार्क्सवादी या प्रगतिशील विचारधारा के अनुसार श्रमिक और कामगारों को सुखी होना ही चाहिए। दिनकर भी ऐसा ही अटूट विश्वास है, देखिये –

'' पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुराने वाला?

या कि न्याय खोजते विध्न का शीश उडद्याने वाला?

यहॅा कोई सा भी पाप पूण्य मानवीय अस्मिता और न्यास से ऊपर नहीं है। अपितु हर बाधा और विध्न को पार करती मानवीय अस्मिता का गुणगाान है।

मार्क्सवादी या प्रगतिशील विचारधारा के अनुसार श्रमिक और कामगारों को सुखी होना ही चाहिए। दिनकर का भी ऐसा ही अटूट विश्वास है, देखिये –

''जिसने श्रम जल दिया, उसे पीछे मत रह जाने दो।

विजित प्रकृति से सबसे पहले उसको सुख पाने दो।

जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज मात्र का धन है।

धर्मराज उसके कण–गण का अधिकारी जन जन है। ''

यहॉ पर प्रकृति की सम्पदा और उत्पादन पर श्रमिकों को वरीयता दी गयी है न कि बिचौलियों और दलालों को।

दिनकर के काव्यानुसार न्याय आधारित समाज ही स्थायी शांति की गारन्टी है। इसके अभाव में शांति संभव ही नहीं है–

''न्याय शांति का प्रथम न्यास है,

जब तक न्याय न आता

कैसा भी हो, महल शांति का

सुदृढ़ नहीं रह पाता।''

समाजवादी विचारधारा के प्रति दिनकर की आस्था और प्रमाण इन पंक्तियों से समझा और परखा जा सकता है–

' पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितों का खड्ग

शोषण की श्रृंखला के हेतु बनती जो शांति

युद्ध है यथार्थ में वह भीषण अशांति है।

सहना उसे हो मौन हार मनुजत्व की है।

ईश की अवज्ञा घोर पौरूष की भ्रांति है।

पातक मनुष्य का है, मरण मनुष्पता का

ऐसी श्रृंखला में धर्म विपल्व है, क्रांति है।''

समाजवाद का आधारभूत सिद्धान्त है आर्थिक समानता। इसके बिना सुखा–शांति की बात करना कोरी कल्पना है। स्थायी शांति की प्रथम शर्त आर्थिक समानता है।

क्रांति का कवि दिनकर अपनी प्रगतिशील चेतना से भकर फुॅफकार उठा है–

''क्रांतिधात्रि कविते! जाग उठ अंबर में आग लगा दें,

पतन पाप, पाखण्ड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।

अतः संक्षेप में कह सकता हूँ कि दिनकर का काव्य मूलरूप से समतावादी समाज की संरचना का आकांक्षी काव्य है जिसमें न्याय आधारित, समानता आधारित समाज और व्यक्ति को पूरा सम्मान देते हुऐ अन्याय, शोषण, जातिवादी, आर्थिक असमानता, भाग्यवादिता आदि का मुखर विरोध और मानवीय श्रम और पुरूषार्थ को महत्वपूर्ण ढंग से वाणी दी गयी है, जो कि उनकी प्रगतिशील चेतना का अकाट्य प्रमाण है।